झारखण्ड ... असफलताओं का भी सामना करना पड़ा ... में एक स्वतंत्र राज्य झारखण्ड प्राप्त हुआ।

PG IV 5th Start GE-II 26/4/20 (1)

(A) बिरसा मुण्डा आन्दोलन (Birsa Munda Movement)

बिरसा आन्दोलन बिरसा नामक व्यक्ति के व्यक्तित्व से जन्मा है। बिरसा के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को जानना आवश्यक है क्योंकि बिरसा अंग्रेज शासकों के विरुद्ध कैसे खड़ा हुआ, इसकी अपनी कहानी है। सुगना मुण्डा उलीहातु बिहार नामक गाँव में हुआ। बिरसा निर्धन परिवार के थे और ईसाई धर्म से प्रभावित थे। आपके पिता का ईसाई नाम मसीहदास था और बिरसा का नाम दाउद मुण्डा रखा गया। बिरसा जंगलों में भेड़ चराया करता था। 1886 में उसको जर्मन ईसाई मिशन उच्च प्राथमिक विद्यालय चाईबासा में भर्ती कराया गया। यहाँ यह 1890 तक रहा।

हम जानते हैं कि ईसाई मिशनरियों का भारत में एक ही मुख्य उद्देश्य था कि भारतीयों को ईसाई बनाया जाय। इस कार्य के लिये जनजातियों को तरह-तरह के प्रलोभन दिये जाते थे। ईसाई मिशनों द्वारा जनजातियों के मध्य भूमि वापसी के आन्दोलन चलाये जा रहे थे। इसी समय मुंडा सरदारों से ईसाई मिशनरियों के संबंध न केवल बिगड़ गये, बल्कि लगभग समाप्त हो गये। बिरसा ने इस घटना की जमकर आलोचना की। इस आलोचना से क्रोधित होकर बिरसा को स्कूल से निष्कासित कर दिया गया। इस घटना ने बिरसा के सम्पूर्ण सोच को ही बदल दिया। उसे अंग्रेजों के विरुद्ध आन्दोलन चलाने की प्रेरणा मिली।

---

26. के.एस.सिंह, सोशल मूवमेन्टस एण्ड द स्टेट, पृष्ठ 277.
27. के.एस.सिंह, सोशल मूवमेन्टस एण्ड द स्टेट, 281-285.

Scanned with CamScan

इस घटना के फलस्वरूप 1890 में बिरसा ने चाईबासा छोड़ दिया और ईसाई धर्म का परित्याग कर दिया। ईसाई धर्म त्यागने के पश्चात वह आनन्द पाण्डे नामक वैष्णव साधु के सम्पर्क में आया। उनके प्रभाव से जहाँ मांस खाना छोड़ दिया, वहीं यज्ञोपवीत भी धारण कर लिया। वह गोवध के विरुद्ध प्रचार करने लगा। इस अवस्था तक आते-आते वह एक धार्मिक व्यक्ति बन गया। कहा जाता है कि बिरसा को भगवान विष्णु के दर्शन भी हुए थे। वास्तव में, बिरसा को सरदार आन्दोलन, ईसाई धर्म और वैष्णव धर्म ने बहुत गहराई से प्रभावित किया था। कालान्तर में उसका सम्पूर्ण जीवन ही धार्मिक क्रियाकलापों में व्यस्त हो गया। वह धार्मिक उपदेश देने लगा। धर्म के उपदेशों ने उसे जनजातियों के ईश्वर के दूत के रूप में देखा जाने लगा। बिरसा के अनुयायियों ने यह मानना शुरू कर दिया कि 1895 में प्रभु ने उसके हृदय में प्रवेश कर लिया था।

अपने समाज में बिरसा एक दैवी शक्ति के रूप में उभर कर सामने आया। उसके उपदेशों से प्रभावित होकर जनजातियों के मुंडा सरदार ईसाई धर्म का बहिष्कार करने लगे। वह अपने धार्मिक प्रवचनों में पुरोहितवाद का खण्डन-मण्डन करता था। उसने अपने समाज में चोरी, भीख मांगना और हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया था। कालान्तर में बिरसा एक शक्तिशाली पंथ हो गया।

यह आश्चर्य की बात है कि बिरसा मुण्डा जैसे महान और कर्मठ जनजातीय नेता को जितना प्रचार मिलना चाहिए था, प्राप्त नहीं हुआ। स्वतंत्रता के तीन दशक के पश्चात बिरसा मुण्डा व्यक्तित्व को लेकर राजनीतिक और सांस्कृतिक संस्थाओं ने बिरसा-मुण्डा के कार्यों और व्यक्तित्व के प्रचार-प्रसार में कोई कोर कसर नहीं उठा रखी। बिरसा मुण्डा स्टेच्यू कमेटी ने आक्रमण रूप में सरकार की आलोचना की। क्योंकि लोकतंत्र की यह विशेषता है कि जब तक किसी चीज़ को लेकर आवाज बुलन्द न की जाय सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। बिरसा की याद में जो विरोध दर्शाया गया उसके परिणामस्वरूप 15 नवम्बर, 1989, को बिरसा मुण्डा पर एक डाक टिकट जारी किया गया। 16 अक्टूबर, 1989 को उसके पोर्टेट का पार्लियामेन्ट के केन्द्रीय हाल में अनावरण किया गया। इसके साथ ही केन्द्रीय कारागार और रांचीं हवाई अड्डे का नाम बिरसा मुण्डा रखा गया। बिरसा मुण्डा के सम्मान में उस समय चार चाँद लग गए जब 28 अगस्त, 1998 को पार्लियामेन्ट हाउस के अहाते में बिरसा मुण्डा की मूर्ति का अनावरण भारत के राष्ट्रपति द्वारा किया गया। निश्चय ही यह सम्मान उन्हें जनजातीय नेताओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्रदान करता है। एक ऐसे व्यक्तित्व की याद दिलाता है जो एक साथ लोक नायक, धार्मिक उपदेशक, समाज सुधारक, जुझारू और संघर्षशील व्यक्ति था। इसके साथ ही अंग्रेज शासकों और बाहरी लोग जो जनजातियों का शोषण और उत्पीड़न कर रहे थे उनसे भी नियोजित ढ़ंग से संघर्ष करता रहा। इनका डटकर विरोध किया। वास्तव में, बिरसा मुण्डा का व्यक्तित्व भव्य और विशाल था।

Scanned with CamScanner

कुमार सुरेश सिंह का विचार है कि "बिरसा मुण्डा और उनके आन्दोलन के पुर्नअध्ययन में दो बातें और कहने के लायक हैं। पहली यह कि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में वनों पर औपनिवेशिक नियंत्रण से जुड़े मुद्दे .....बिरसा मुण्डा ने खुद ही एक धार्मिक नेता के रूप में उभरने से काफी पहले 1892 में संरक्षित वन के सीमांकन के खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजाया था।..... मुण्डा भूमि के इस क्षेत्र में जहाँ सरदारों का गढ़ था,जमीन का हस्तान्तरण मुख्य समस्या थी। दूसरा सवाल जिसने इतिहासकारों को उलझन में डाल रखा है वह उलगुलान की विभिन्न घटनाओं में बिरसा मुन्डा की वास्तविक भूमिका से जुड़ा हुआ है।[28]"

जनजातीय आन्दोलन के हम इस तथ्य से परिचित हैं कि इन आन्दोलनों में साम्राज्यवादी शक्तियों की छल-कपट, शोषण और उत्पीड़न की नीति ने जनजातियों के व्यक्तियों को विद्रोह अथवा आन्दोलन करने के लिये प्रेरित किया। इसलिये मुण्डा नेताओं को यह अनुभव होने लगा कि उनके दुःख और पीड़ा का कारण अंग्रेजी शासन है। बिरसा जनजातियों के भूमि संबंधी समस्याओं को गहराई से अनुभव कर रहे थे। समस्या के निराकरण हेतु निरन्तर योजना बनाया करते थे। मुण्डा लोग बाहरी लोगों को बर्दास्त नहीं कर रहे थे क्योंकि ये शोषक थे। इस शोषण की गति को उस समय और शक्ति प्राप्त हो गयी है जब बाहरी धनाढ्य लोगों ने जनजातियों के क्षेत्रों में स्वार्थवश प्रवेश किया। आने वालों में निकट के कृषि समुदाय के लोग भी थे जो जनजातियों की भूमि को हड़पने के जुगाड़ में लगे रहते थे। दूसरे वर्ग के वे लोग थे जो दूसरों की सम्पत्ति को निगलने की फिराक में लगे रहते थे। जैसे व्यापारी, महाजन, सूदखोर और जमीन्दार। अंग्रेज शासकों की जैसे-जैसे शक्ति बढ़ती जा रही थी और उनका नियंत्रण जनजातियों पर बढ़ता जा रहा था वैसे-वैसे बाहरी लोग जनजातियों की सम्पत्ति को हड़पने के लिये उतावले हो रहे थे। इन शोषणयुक्त घटनाओं ने जनजातियों में विद्रोह की चिंगारी को प्रज्जवलित किया। इस समाज में दोहरी प्रक्रिया चल रही थी। एक तरफ जनजातियों में बाहरी लोगों के प्रति असन्तोष बढ़ रहा था वहीं दूसरी ओर जनजाति के व्यक्ति ईसाई मिशनरियों के प्रभाव से अपनी संस्कृति का पुनर्उत्थान करने में जुट गए। लेकिन इन सब के बावजूद भी 1874 तक मुंडा और उंराव सरदारों का दबदबा और प्रभाव निरन्तर क्षीण हो रहा था और बाहरी लोगों का प्रभाव बढ़ रहा था। स्थितियाँ, इस प्रकार, बद-से-बदत्तर हो रही थीं कि जनजाति के लोग अपनी भूमि को छोड़ने के लिये विवश हो रहे थे। अन्ततः खेत के मालिक जनजाति खेत के मजदूर बन गये। अत्याचार करने की कोई सीमा नहीं थी। मजदूरों से बेगार लिया जाता था।

इस प्रकार की घटनायें शायद ही इतिहास के पन्नों में देखने को मिले जिस प्रकार के अत्याचार और कष्टप्रद उत्पीड़न जनजातियों के साथ किया गया है। देखें "अगर उत्पीड़क (जागीरदार) को एक घोड़ा चाहिए तो उसका दाम चुकाना पड़ेगा कोल (आदिवासी) को

28. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा मुण्डा, पृष्ठ 5.

Scanned with CamScanner

ही। ..... यदि जागीरदार के यहाँ कोई मर गया है तो वह मृत व्यक्ति के शव संस्कार के लिये कोलों पर टैक्स बैठाएगा और यदि जागीरदार के यहाँ बच्चा पैदा हुआ तो उस मौके पर धूम-धाम के लिये कोलों पर पुनः टैक्स। ..... यदि कोल के घर कोई मर गया तो कोल पर जुर्माना लगाया जाता था मानो उस मौत के लिए वही जिम्मेदार है..... लड़की की शादी हुई तो बेचारे को उसके लिये टैक्स अदा करना पड़ेगा।[29]'' इस उदाहरण से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जमीन्दारों, महाजनों और गैर जनजातियों के धनाड्य व्यक्तियों ने इनका जोंक की तरह खून चूसा है। एक बेजान ढांचा, चिपके पेट, कर्ज में डूबा जनजाति का व्यक्ति जीवित रहते हुए भी मरा जैसा था। बन्धुआ मजदूर की जिन्दगी जीने के लिये विवश था। अजीब स्थिति थी कि, न उसे अपने पर कोई अधिकार था, न अपनी सम्पत्ति पर और न पत्नी और बच्चों पर। गुलाम से बदत्तर जिन्दगी थी। इस विस्फोटक स्थिति और परिस्थिति में शान्ति प्रिय वनवासी जनजातियों में विद्रोह अथवा आन्दोलन फूटता है तो स्वाभाविक ही था। इन सब स्थितियों ने मुंडा समाज को अन्दर ही अन्दर तोड़ दिया। मुंडा जनजाति के व्यक्तियों में बुद्धि और जनशक्ति की अद्भुत क्षमता थी और इसे अंग्रेज प्रशासकों ने भी स्वीकार किया। वे बिचौलिये (पाहन) जो अंग्रेजों और जनजातियों के मध्य कार्य करते थे मुंडाओं के आगे आने से पीछे चले गये। किन्तु मुन्डाओं की भूमि पर जो कब्जे कर लिये थे, इससे सम्पूर्ण आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था चरमरा गयी थी। इससे जो असन्तोष जन्मा वह जंगल की आग की तरह आगे चलकर फैल गया क्योंकि बिरसा आन्दोलन में धर्म और भूमि सम्बन्धी समस्यायें और विवाद एक साथ खडे हो गये। इसलिये बिरसा आन्दोलन में इन तथ्यों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

जनजातियों के आन्दोलन अथवा विद्रोह में एक सामान्य तथ्य देखा गया कि उनकी जमीनों पर जमीन्दारों ने कब्जा कर लिया है। यह सब छल-कपट की नीतियों के द्वारा किया गया था। इससे जनजातियों में आक्रोश भी था और असन्तोष भी। उनमें अन्दर ही अन्दर विद्रोह की चिंगारी सुलग रही थी। उन्होंने अपने अधिकार और भूमि पर पुनः अधिकार प्राप्त करने हेतु लगभग 15 वर्ष तक निरन्तर आन्दोलन किए। इस आन्दोलन को 'सरदारी लड़ाई' के नाम से भी जाना जाता है। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में जो भावना कार्य कर रही थी वह यह थी कि वे ही वास्तविक रूप में जमीन के स्वामी हैं, जमीन्दार नहीं हैं। इसलिये उन्होंने निर्णय लिया है कि वे किसी भी प्रकार का राजस्व जमीन्दारों को नहीं देंगे। एक लम्बे समय तक आन्दोलन चलने के पश्चात भी कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आये। ऐसी परिस्थिति में बिरसा मुण्डा का नेतृत्व सरदारों को प्राप्त हुआ। बिरसा हर कीमत पर ब्रिटिश हुकूमत को समाप्त करना चाहते थे (6 अगस्त, 1895) के चौकीदारों द्वारा तमाड़ थाना को यह सूचना प्राप्त हुई कि बिरसा ने यह घोषणा कर दी है कि अंग्रेजी सरकार खत्म हो गयी है। बिरसा को बन्दी बनाने के लिये सरकार सक्रिय हो गयी। 8 अगस्त, 1895 को रात्रि में

29. कुमार सुरेश सिंह, बिरसा मुण्डा, पृष्ठ 26.

Scanned with CamScanner